जनसत्ता

8 मार्च, 2019

आतंक का सिलसिला

जम्मू-कश्मीर के पुलवामा में हुए आतंकी हमले में सीआरपीएफ के बयालीस जवानों के मारे जाने के बाद पूरे राज्य में सुरक्षा बलों को सावधान रखा गया था। सब जगह चौकसी थी। लेकिन गुरुवार को दोपहर फिर से एक आतंकी हमले से यही जाहिर हुआ है कि राज्य में फिलहाल आतंकवादियों को कम करके आंकना भूल होगी। गौरतलब है कि जम्मू में एक बस स्टैंड पर हुए बम धमाके में एक व्यक्ति की जान चली गई और दो दर्जन से ज्यादा लोग घायल हो गए। सुरक्षा बलों की चौकसी के बावजूद यह हमला बताता है कि आतंकवादियों ने पूरे इलाके में अपना जाल बिछाया हुआ है और वे ऐसे बम विस्फोटों से अपनी मौजूदगी दर्ज कराने की कोशिश करते रहते हैं। बम विस्फोट के बाद जम्मू क्षेत्र के पुलिस निदेशक ने कहा कि घटना की प्रकृति को देखते हुए साफ है कि इसे सांप्रदायिक सौहार्द और शांति की स्थिति को बिगाड़ने की मंशा से अंजाम दिया गया। लेकिन जब आम लोग इस मंशा को समझने लगते हैं तो ऐसे हमलों का मकसद अपने आप नाकाम हो जाता है। इसके बावजूद यह सच है कि आतंकवादियों की हरकतों को लेकर किसी भी तरह की लापरवाही भारी पड़ सकती है।

यह समझना मुश्किल है कि एक ओर जम्मू-कश्मीर में आतंक का माहौल बनाए रखने के लिए इस स्तर की हिंसा भी जारी रखी जा रही है और दूसरी ओर उनका समर्थन करने वाले अलगाववादी संगठन शांति से सारे सवाल सुलझ जाने की उम्मीद भी पालते हैं। विडंबना है कि भारत सरकार जहां राज्य में शांति बहाली के लिए बातचीत से लेकर सुरक्षा तक के सभी मोर्चों पर चौकसी बरतने के इंतजाम में लगी है, वहीं आतंकी संगठन माहौल बिगाड़ कर समस्या को और ज्यादा जटिल बनाने की जुगत में लगे हैं। सवाल है कि बम हमलों में आम लोगों या फिर सुरक्षा बलों की जान ले लेने से किस तरह की समस्या का समाधान होगा? ऐसे आतंकी हमलों को अंजाम देने वाले संगठन क्या यह समझ पाने में सक्षम नहीं हैं कि सरकार उन्हें रोकने के लिए सख्त कार्रवाई कर सकती है? इस तरह का माहौल बने रहने से किसे लाभ हो रहा है! हाल ही में पाकिस्तान ने मसूद अजहर के भाई सहित कई आतंकियों को गिरफ्तार कर आतंक का सामना करने के मामले में एक सकारात्मक संदेश दिया था। लेकिन अब जम्मू में फिर बम हमले की घटना से यही लगता है कि पाकिस्तान के ठिकाने से भारत के खिलाफ अपनी गतिविधियां संचालित करने वालों पर पूरी तरह काबू पाना अभी बाकी है।

दरअसल, पुलवामा में आतंकी हमले के बाद भारत ने पाकिस्तान के खिलाफ सर्जिकल स्ट्राइक की, तब से पाकिस्तान की ओर से किसी कार्रवाई की आशंका बनी हुई थी। लेकिन भारत के रुख को देखते हुए शायद फिर से आतंकियों के जरिए परोक्ष रूप से संदेश देने की कोशिश की गई है। आतंकी संगठनों को यह अंदाजा है कि ऐसे छोटे-छोटे हमले भी नागरिकों को खौफ में बनाए रख सकते हैं। लेकिन यह ध्यान रखने की जरूरत है कि भारतीय सेना और अर्धसैनिक बलों ने कई कामयाब कार्रवाई करके आतंकवादियों को मुंहतोड़ जवाब दिया है। अब अगर आतंकियों और उनका समर्थन करने वाले अलगाववादी समूहों को यह समझना जरूरी नहीं लगता है कि उनकी गतिविधियों से कैसे हालात पैदा होंगे, तो देश के सुरक्षा बलों के सामने आतंकियों का सामना करने या उन्हें उचित जवाब देने के सिवा और क्या रास्ता बचेगा!

अयोध्या की जमीन

सर्वोच्च न्यायालय एक बार फिर बातचीत के जरिए अयोध्या विवाद को सुलझाने पर विचार कर रहा है। हालांकि पहले भी उसने कहा था कि दोनों पक्ष इस विवाद को आपसी सहमति से सुलझा लें, तो राम मंदिर निर्माण की प्रक्रिया जल्दी शुरू हो सकेगी। मगर तब अपेक्षित पहल नहीं हो सकी थी। अब न्यायालय ने कहा है कि दोनों पक्ष अपने मध्यस्थों की सूची सौंपें, ताकि वह निर्णय कर सके कि बातचीत के जरिए इस मसले का हल निकाला जा सकता है या नहीं। इसके लिए आठ हफ्ते का समय दिया गया है। हालांकि इस निर्देश पर मुसलिम संगठन सहमत दिख रहे हैं, पर खुद राम मंदिर निर्माण के लिए आंदोलन कर रहे संगठनों की राय भिन्न है। विपक्ष भी कह रहा है कि इस मौके पर मध्यस्थता के जरिए हल निकालने की पहल उचित नहीं होगी। हालांकि मध्यस्थों की सूची सौंपने की जो अवधि तय की गई है, उस समय तक आम चुनाव संपन्न हो चुके होंगे। फिर उन मध्यस्थों को चार हफ्ते के भीतर अपनी राय देनी होगी। इस तरह विपक्ष का भय बेवजह है। अयोध्या मामले का निपटारा बातचीत या फिर अदालत के फैसले से जैसे भी हो, जल्दी हो जाए, तो अच्छा।

राम मंदिर निर्माण में सबसे बड़ी उलझन वहां की जमीन को लेकर है। उस जमीन के कुछ हिस्से पर सुन्नी वक्फ बोर्ड का दावा है और कुछ पर निर्मोही अखाड़े का। राम मंदिर निर्माण के लिए आंदोलन करने वाले संगठनों का कहना है कि वह पूरी जमीन राम मंदिर निर्माण के लिए मिलनी चाहिए। जमीन संबंधी विवाद को सुलझाने के लिए इलाहाबाद हाइकोर्ट लंबे समय तक जद्दोजहद करता रहा। फिर सर्वोच्च न्यायालय की पहल पर इससे संबंधी सभी मामलों को एक साथ जोड़ा गया। पर अंतिम निर्णय तक पहुंचने में मुश्किलें बनी हुई हैं। इसीलिए सर्वोच्च न्यायालय ने बातचीत के जरिए इसके समाधान पर विचार किया है। हालांकि यह पहला मौका नहीं है, जब मध्यस्थों के जरिए इस समस्या का हल निकालने का प्रयास किया जा रहा है। इलाहाबाद हाइकोर्ट तीन बार यह तरीका आजमा चुका है, पर कोई नतीजा नहीं निकल पाया। अब एक बार फिर जो मध्यस्थ तय होंगे, वे कहां तक किसी मसले पर एकमत हो पाएंगे, देखने की बात होगी।

मध्यस्थों के जरिए किसी निर्णय पर पहुंचने में एक मुश्किल यह है कि कैसे कुछ लोगों के मत के आधार पर दोनों समुदायों के बड़े वर्ग की भावनाओं को समझा जा सकेगा। कुछ मुसलिम प्रतिनिधि इस बात पर राजी देखे गए हैं कि सुन्नी वक्फ बोर्ड के हिस्से की जमीन के बराबर जमीन कहीं और दे दी जाए, जहां वे मस्जिद बना सकें, पर कई प्रतिनिधि इस पर राजी नहीं हुए। इसी तरह हिंदू महासभा जैसे हिंदू संगठनों में भी कई बिंदुओं पर मतभेद नजर आता है। इसलिए यह दावा करना मुश्किल है कि दोनों पक्षों की तरफ से तय किए गए मध्यस्थों की राय उनके समूचे वर्ग की राय मान ली जाएगी। हालांकि अभी सर्वोच्च न्यायालय ने मध्यस्थों की राय के आधार पर अपना निर्णय सुनाने को नहीं कहा है। अभी वह तय करेगा कि बातचीत के जरिए इसका समाधान निकालने की पहल कितनी कारगर साबित हो सकती है। दरअसल, राम मंदिर विवाद को राजनीतिक रंग दे दिए जाने के बाद से आपसी रजामंदी से इस समस्या को हल करना कठिन होता गया है। इसलिए इसके निपटारे को लेकर राजनीतिक इच्छाशक्ति की भी दरकार है।

कल्पमेधा

जीवन में जो कुछ पवित्र और धार्मिक है स्त्रियां उसकी विशेष संरक्षिकाएं हैं।

-महात्मा गांधी

रोजगार का संकट

संतोष मेहरोत्रा

सन 2000 से 2012 के बीच भारत में पचहत्तर लाख रोजगार सृजित हुए थे। अगर हम सही-सही नीतियों पर अमल करें तो आज भी अर्थव्यवस्था उतने ही रोजगार पैदा कर सकती है। चार वर्षों में हर साल कम से कम पचहत्तर लाख नए गैर-कृषि रोजगार सृजित करने चाहिए थे, लेकिन इसने केवल बाईस लाख रोजगार सृजित किए। इसमें कृषि छोड़ने के इच्छुक कृषि श्रमिकों के लिए जरूरी गैर-कृषि रोजगार शामिल नहीं हैं।

शिक्षित बेरोजगारी की स्थिति भयावह हो गई है, क्योंकि युवाओं को बेहतर शिक्षा मिल रही है और वे कृषि की जगह उद्योगों और सेवा क्षेत्र में नौकरी करना चाहते हैं। यह नतीजा श्रम ब्यूरो के सालाना सर्वे के आकलन में सामने आया। इसमें ग्रामीण और शहरी, संगठित और असंगठित दोनों क्षेत्रों के रोजगार शामिल हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो इसमें ईपीएफओ / एनपीएस (संगठित) के साथ-साथ ऐसे रोजगार भी हैं, जो मुद्रा लोन या दूसरे उपायों से पैदा हो सकते हैं। बाद के दोनों स्रोत ठीक वही हैं, जिन्हें लेकर सरकार का ठीक-ठीक यही दावा है कि रोजगार के जो आंकड़े हैं, उसमें इन दोनों को शामिल नहीं किया गया है। सरकार का दावा है कि रोजगार को लेकर पर्याप्त 'अच्छे' आंकड़े नहीं हैं। लेकिन सरकार के इस दावे को बिल्कुल नहीं माना जा सकता है।

एनएसएसओ के ताजा श्रम बल (लेबर फोर्स) सर्वे (पीएलएफएस 2017-18) के हालिया आंकड़ों में रोजगार / बेरोजगारी की उसी प्रश्नावली और परिभाषा का उपयोग किया गया है, जो एनएसएसओ के पहले के सर्वे में होते थे। एनएसएसओ के 2017-18 के आंकड़ों से साफ है कि वास्तव में रोजगार की स्थिति और भी विकट रही। 2011-12 के बाद खुली बेरोजगारी यानी ऐसी स्थिति जब लोगों के पास करने के लिए कोई काम न हो, की दर बढ़ी है। आंकड़ों से पता चलता है कि 1973-74 और 2011-12 के बीच खुली बेरोजगारी दर कभी भी 2.6 फीसद से अधिक नहीं थी। अब 2017-18 में यह बढ़ कर 6.1 फीसद हो गई। यह बिल्कुल आश्चर्यजनक नहीं है क्योंकि देश में पिछले दस-बारह वर्षों में अधिक-से-अधिक युवा शिक्षित हुए हैं। इस अवधि में उच्च शिक्षा में नामांकन दर (18-23 वर्ष के लिए) 2006 की ग्यारह फीसद से बढ़ कर 2016 में छब्बीस फीसद हो गई। पंद्रह से सोलह वर्ष के बच्चों की सकल माध्यमिक (कक्षा नौ और दस के लिए) नामांकन दर 2010 में अट्ठावन फीसद से बढ़ कर 2016 में नब्बे फीसद हो गई। ऐसे युवा खेती के बजाय शहरों में किसी उद्योग या सेवा क्षेत्र में नियमित नौकरी की उम्मीद करते हैं। अगर उनके पास इस स्तर तक की शिक्षा हासिल करने के वित्तीय साधन हैं, तो वे बेरोजगार रहने का जोखिम भी उठा सकते हैं। गरीब लोग जो बहुत कम पढ़े-लिखे हैं, उनके पास ऐसी बेरोजगारी को झेलने की क्षमता और कम होती है। यही वजह है कि उनकी बेरोजगारी की दर कम है।

हालिया आंकड़ों से यह भी पता चलता है कि जैसे-जैसे खुली बेरोजगारी दर बढ़ती है, तो श्रम बल से बाहर होने वाले अधिक लोग निराश होते जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो वे काम की तलाश बंद कर देते हैं। भले ही उनकी उम्र (पंद्रह साल से अधिक) काम करने की होती है। इसीलिए सभी उम्र के लोगों के श्रम बल की भागीदारी दर 2004-05 में 43 फीसद से घट कर 2011-12 में 39.5 फीसद और 2017-18 में 36.9 फीसद हो गई थी। इन सबके बीच सरकार के अर्थशास्त्रियों की ओर से बार-बार कहा जाता है कि रोजगार को लेकर कोई संकट नहीं है। हाल तक प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के एक सदस्य ने भी अपने रोजगार आकलन के आधार पर दोहराया था कि रोजगार की धीमी वृद्धि के बारे में चिंता करने की जरूरत नहीं है।

वर्ष 2011-12 तक खुली बेरोजगारी का आंकड़ा लगभग एक करोड़ था, लेकिन 2015-16 तक यह बढ़ कर 1.65 करोड़ हो गया। 2011-12 के बाद इसमें वृद्धि से पता चलता है कि इस अवधि से पहले जो लोग स्कूली शिक्षा हासिल कर रहे हैं, वे गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार की तलाश करेंगे, लेकिन रोजगार नहीं मिलेगा। हालिया आंकड़ों से पता चलता है कि 2017-18 तक यह स्थिति और बदतर हो गई। इससे भी बदतर स्थिति यह है कि इससे शिक्षितों की बेरोजगारी दर में तेज वृद्धि (वार्षिक सर्वे, श्रम ब्यूरो के अनुमानों के आधार पर) का पता चलता है। माध्यमिक शिक्षा हासिल करने वालों की बेरोजगारी दर 2011-12 में 0.6 फीसद से बढ़ कर 2016 में 2.4 फीसद हो गई। इसी अवधि में दसवीं की शिक्षा हासिल करने वालों की बेरोजगारी दर 1.3 फीसद से 3.2 फीसद, बारहवीं पास की दो फीसद से 4.4 फीसद, स्नातकों की 4.1 फीसद से बढ़ कर 8.4 फीसद और स्नातकोत्तर की बेरोजगारी दर 5.3 फीसद से बढ़ कर 8.5 फीसद हो गई। इससे भी अधिक चिंताजनक बात यह है

कि तकनीकी शिक्षा हासिल करने वाले स्नातकों की बेरोजगारी दर 6.9 से 11 फीसद, स्नातकोत्तरों की 5.7 फीसद से 7.7 फीसद और व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षितों की 4.9 फीसद से बढ़ कर 7.9 फीसद हो गई। यानी आप जितना अधिक शिक्षित हैं, उतना ही बेरोजगार रहने की संभावना है।

भारत के आर्थिक इतिहास में 2004-05 और 2011-12 के दौरान कृषि में श्रमिकों की संख्या में तेजी से गिरावट आई थी। इसी तरह कृषि क्षेत्र में काम करने वाले युवाओं की संख्या 2004-05 और 2011-12 के बीच गिर कर 8.68 करोड़ से 6.09 करोड़ (या 30 लाख प्रति वर्ष की दर) हो गई। हालांकि, 2012 के बाद 2015-16 तक कृषि में युवाओं की संख्या बढ़ कर 8.48 करोड़ हो गई और यहां तक कि उससे ज्यादा बढ़ गई। हम विकास के जिस दौर में हैं, वैसे में भारत के लिए वास्तव में जो मायने रखता है वह है, गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार में वृद्धि। 2004-05 से 2011-12 के बीच 5.12 करोड़ गैर कृषि रोजगार सृजित हुए, जो बहुत सराहनीय और आशाजनक भी है। जबकि इसके विपरीत, 2012 के बाद 2016-17 तक गैर-कृषि रोजगार केवल 12 लाख प्रतिवर्ष (या कुल 48 लाख) ही सृजित हुए।

सबसे अधिक चिंता की बात यह है कि विनिर्माण (मैन्युफैक्चरिंग) क्षेत्र में रोजगार 2011-12 में 5.89 करोड़ से घट कर 2015-16 में 4.83 करोड़ हो गए, यानी चार साल की अवधि में 1.6 करोड़ से अधिक रोजगार कम हो गए। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (आइआइपी) में वृद्धि लगातार धीमी बनी हुई है। विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार में गिरावट भारतीय अर्थव्यवस्था में गिरावट का संकेत है।

ऐसे युवा (15-29 आयु वर्ग) जो 'रोजगार, शिक्षा और प्रशिक्षण (एनईईटी)' में शामिल नहीं हैं, उनकी संख्या 2004-05 में सात करोड़ थी। 2011-12 तक इसमें बीस लाख सालाना के हिसाब से वृद्धि हुई थी। लेकिन दुख की बात है कि इसके बाद 2015-16 तक इसमें पचास लाख प्रति वर्ष के हिसाब से वृद्धि हो रही थी। अगर बाद वाला रुझान जारी रहा (जैसा कि इसके प्रमाण हैं) तो हमारा अनुमान है कि 2017-18 में बढ़ कर यह 11.56 करोड़ हो जाएगा। ये आंकड़े एनईईटी और बेरोजगार युवा भविष्य की श्रम शक्ति को दर्शाते हैं जिसका उपयोग देश के मानव संसाधन विकास को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

रोजगार की कमी एक वास्तविक संकट है। इसके अलावा, एनईईटी की संख्या सिर्फ चार वर्षों (2011-12 से 2015-16) में ही दो करोड़ से अधिक बढ़ गई है। साथ ही, श्रम शक्ति में वास्तविक वृद्धि एक करोड़ हुई है। सन 2000 से 2012 के बीच भारत में पचहत्तर लाख रोजगार सृजित हुए थे। अगर हम सही-सही नीतियों पर अमल करें तो आज भी अर्थव्यवस्था उतने ही रोजगार पैदा कर सकती है। चार वर्षों में हर साल कम से कम पचहत्तर लाख नए गैर-कृषि रोजगार सृजित करने चाहिए थे, लेकिन इसने केवल बाईस लाख रोजगार सृजित किए। इसमें कृषि छोड़ने के इच्छुक कृषि श्रमिकों के लिए जरूरी गैर-कृषि रोजगार शामिल नहीं हैं। अगर सरकार रोजगार की समस्या को समझने को तैयार नहीं है, तो इसके समाधान के लिए कुछ करने की शायद ही कोई संभावना है।

स्त्री का हक

निशा नाग

दुनिया मेरे आगे

हाल ही में एक विज्ञापन देखा, जिसमें स्त्रियों की भागीदारी का प्रश्न गहराई से उठाया गया था। कथा कुछ इस प्रकार थी- एक पुरुष काम से घर लौटता है तो देखता है कि उसके दोनों बच्चे घर के लॉन में धूल-मिट्टी से सने खेल रहे हैं। उसे देखते ही वे सहम कर एक ओर खड़े हो जाते हैं। जब वह घर में घुसता है तो चारों ओर उसे अव्यवस्था दिखाई देती है। बच्चों के खिलौने बिखरे हुए हैं, घर की तमाम लाइटें और पंखे चल रहे हैं। नल से पानी टपकता हुआ और सिंक में जूठे बरतनों का ढेर है। अजीब अविश्वास से भर कर और अनहोनी की कल्पना कर वह पत्नी को खोजता हुआ शयन कक्ष की ओर बढ़ता है। दरवाजे की फांक से उसे बिस्तर पर पत्नी के पैर दिखाई देते हैं। वह भयभीत होकर दरवाजे को ठेलता है तो यह देख कर सुकून की सांस लेता है कि पत्नी लैपटॉप पर कुछ देख रही है। वह खीझ कर पूछता- 'यह सब क्या है?' पत्नी का जवाब है- 'कुछ नहीं, बस तुम रोज-रोज कहते थे न, कि दिन भर घर पर क्या करती हो! तो बस आज कुछ नहीं किया।'

एक हल्की मुस्कुराहट के साथ स्त्री द्वारा किए जाने वाले भुगतान रहित श्रम का मूल्य वह महिला समझा जाती है। स्त्रियों द्वारा घर के भीतर किए जाने वाले काम की गिनती 'कुछ नहीं' में ही की जाती रही है। कॉलेज में हर वर्ष प्रवेश लेने वाली न जाने कितनी ही छात्राएं जब मां और पिता द्वारा किए जाने वाले काम का कॉलम भरती हैं तो अक्सर कहती हैं- 'मम्मी तो कुछ नहीं करतीं... वे हाउस वाइफ हैं बस'। मैं मुस्कुरा कर इतना ही कहती हूं- 'इतनी बड़ी ऐसे ही हो गई? बिना मां के कुछ किए?'

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री चाहे अवैतनिक श्रम करे या वैतनिक, उसकी स्थिति यही है। बिल्कुल निचले पायदान पर खड़ी स्त्री से लेकर ऊपरी पायदान पर खड़ी निन्यानवे प्रतिशत स्त्रियों का यही हाल है। जैसे मजदूरी करने वाली स्त्रियां अक्सर अकुशल श्रमिक ही होती हैं। वे ईंट-गारा ढोने का काम करती हैं, जिसके लिए उन्हें पुरुष श्रमिकों से कम मजदूरी दी जाती है। किसी काम के दौरान अगर सफाई या झाड़ू लगानी होती है तो भी स्त्रियां ही लगाती हैं। मेरे पूछने पर कि 'फर्श पर बिखरी हुई मिट्टी को कौन साफ करेगा?' तो मिस्त्री साहब ने अपनी कमीज की आस्तीनें चढ़ाते हुए जवाब दिया- 'लेडीज ही साफ करेंगी?' मेरे 'क्यों' का जवाब था- 'लेडीज ही करती हैं'। जबकि स्त्री श्रमिकों की अनुपस्थिति में कोई भी बेलदार झाड़ू लगा देता था।

श्रम के इस विभाजन में यह विषमता हमारी उस सामाजिक संरचना की देन है, जहां स्त्री और पुरुष के कामों में अंतर किया गया है। जबकि जहां ये काम 'बाजार' से जुड़ते हैं, वहां यह विभाजन खत्म होता दिखता है। जैसे घर है तो रसोई की जिम्मेदारी स्त्री की है, लेकिन विराट पैमाने पर बड़े होटलों में 'शेफ' पुरुष ही होता है। कई बड़े नाम खाना बनाने की कला के साथ जुड़े हुए हैं। सिलाई करने या पिरोने काम स्त्रियों का माना गया है, लेकिन फैशन डिजाइनर या टेलर पुरुष अधिक हैं, स्त्रियां कम। वहां श्रम विभाजन का यह नियम लागू नहीं होता। शाम को किसी मजदूर बस्ती में बनी छोलदारियों के पास से गुजरते हुए मैं एक अजीब से अहसास से भर जाती हूं जब देखती हूं कि दिन भर के काम के बाद पुरुष बैठे हुए ताश खेल रहे हैं या मनोरंजन कर रहे हैं, जबकि स्त्री श्रम भरा दिन गुजारने बाद फिर से परिश्रम कर रही है, चूल्हा सुलगा कर रोटी सेंक रही है। उसे कोई रोटी बना कर नहीं देने वाला। वह रोटी बनाएगी, तभी खा पाएगी। यह सभी जानते हैं कि स्त्रियों द्वारा किया जाने वाला दोहरा श्रम उनकी नियति है। चाहे कुछ भी हो, चौका घरनी से ही जुड़ा रहता है। यही कारण है कि बरसों पूर्व बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा लिखी गई प्रसिद्ध थेरी गाथाओं में मुक्ति का एक भाव उस अनुभव से भी जुड़ा हुआ है, जहां वह चूल्हे-चक्की से छूटती है। बुद्ध की शरण में आने के बाद भिक्षुणी कहती है- 'अरी भली मैं छूटी/ चूल्हे-चक्की से/ और तीन टेढ़ी चीजों से/ ओखली से/ मूसल से/ और अपने स्वामी से..!'

आंकड़ों के हिसाब से देखें तो 5-9 आयु वर्ग की लड़कियां अपने बराबर के लड़कों से तीस प्रतिशत ज्यादा काम करती हैं। उत्तराखंड में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार पुरुष एक दिन में औसतन नौ घंटे काम करते हैं तो महिलाएं सोलह घंटे। विडंबना यह है कि समाज महिला श्रम को उस रूप में कहीं भी पहचान नहीं देना चाहता। हाथी के पांव में सबका पांव मान कर दोहरा श्रम करने वाली स्त्रियों को कोई पहचान नहीं दी जाती। समृद्ध परिवारों की स्त्रियों को भी संसाधनों पर मालिकाना हक नहीं मिलता। काम के घंटे तिगुने होने पर भी भुगतान में उन्हें काफी कम मिलता है। दुनिया की कुल संपत्ति का दो प्रतिशत हिस्सा ही स्त्रियों के पास है। स्त्री श्रम की पहचान के इस बड़े प्रश्न का निराकरण स्त्रियां खुद ही सचेत होकर कर सकती हैं। उन्हें बाहर से कोई पहचान नहीं देने वाला।

स्वार्थों से ऊपर

बालाकोट में आतंकियों के ठिकानों पर भारतीय वायु सेना की साहसिक और पाकिस्तान के होश ठिकाने लगाने वाली कार्रवाई को लेकर अपने देश में कुछ दलों द्वारा की जा रही राजनीति निहायत अफसोसनाक है। ये दल एक ओर तो वायु सेना की कार्रवाई की प्रशंसा करते हुए उसे बधाई दे रहे हैं और दूसरी ओर यह भी कह रहे हैं कि सरकार इस सैन्य कार्रवाई का राजनीतिक लाभ उठा रही है। आखिर वे कैसे इस नतीजे पर कैसे पहुंच गए? क्या इससे बुरा और कुछ हो सकता है कि जहां कुछ विपक्षी नेता यह जानना चाह रहे हैं कि बालाकोट में कितने आतंकी मारे गए, वहीं कुछ इस चिंता में दुबले हुए जा रहे हैं कि पाकिस्तान यह क्यों नहीं कह रहा कि भारतीय वायु सेना की कार्रवाई में उसके आतंकी ठिकानों को भारी नुकसान हुआ। वायु सेना की इस कार्रवाई पर राजनेताओं के अतिरिक्त कुछ पत्रकार भी अपना एजेंडा चलाने में पीछे नहीं हैं। वे निजी पूर्वाग्रहों के चलते सैनिक कार्रवाई पर सवाल उठाकर परोक्ष रूप से पाकिस्तान की मदद कर रहे हैं। ऐसे लोग पाकिस्तान में खूब प्रशंसा बटोर रहे हैं।

आखिर इन लोगों को अपने देश की सेना पर ज्यादा भरोसा है या पाकिस्तानी मीडिया पर? इससे भी बड़ा सवाल यह कि ये लोग क्यों नहीं देख पा रहे हैं कि पाकिस्तान उनके बयानों का किस तरह इस्तेमाल कर रहा है! भारत के इक्कीस विपक्षी दलों द्वारा इस कार्रवाई पर बयान जारी करने की व्याख्या पाकिस्तान ने इस रूप में आसानी से कर दी कि भारत के विपक्षी दल अपने प्रधानमंत्री और सेना से असंतुष्ट और असहमत हैं। आखिर इस तरह के बयान से किन राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हुई?

निस्संदेह राजनीतिक एकजुटता का यह मतलब नहीं हो सकता कि विपक्ष सवाल उठाने के अपने अधिकार का परित्याग कर दे। लेकिन इस अधिकार का इस्तेमाल सियासी हितों को साधने के लिए भी नहीं किया जाना चाहिए। राजनीतिक दलों को सेना से जुड़े विषयों पर बयानबाजी से बचना चाहिए। सभी पार्टियों को ध्यान रखना चाहिए कि यदि वे राजनीतिक स्तर को ऊंचा नहीं उठा सकतीं तो कम से कम उसे रसातल में तो न ले जाएं। उन्हें क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठा कर राष्ट्रहित को प्राथमिकता देनी चाहिए।

● *आदर्श दीक्षित, नई दिल्ली*

सेना का काम

पाकिस्तान के बालाकोट में जैश-ए-मोहम्मद के प्रशिक्षण अड्डे पर भारतीय वायु सेना के हमले में मारे गए आतंकवादियों की संख्या के बारे में पिछले कुछ दिनों से बहसबाजी हो रही है। यहां एक बात समझ में नहीं आ रही कि वायुसेना बमवर्षा कर सकुशल अपने क्षेत्र में तुरत-फुरत लौटने का यत्न करेगी या लाशों की गिनती करने में जुट जाएगी?

हमें नहीं भूलना चाहिए कि वायुसेना के पायलट का काम लक्ष्य को भेदना होता है। उससे यह अपेक्षा करना गलत है कि हमले के बाद विमान को कहीं उतार कर वह मारे गए आतंकियों के शवों को गिने। बताया जा रहा है कि बालाकोट में 300 मोबाइल फोन सक्रिय थे। इसका मतलब हुआ कि लगभग इतने ही लोग उस जगह पर मौजूद थे। बालाकोट में जैश-ए-मोहम्मद के आतंकी ठिकानों पर भारतीय वायुसेना के हवाई हमले पर वायुसेना प्रमुख का यह कथन भी मायने रखता है कि 'हमारा काम आतंकी ठिकानों को तबाह करना होता है, उनके शवों की गिनती करना नहीं है। हम कोई लक्ष्य साधते हैं तो उसे तबाह कर ही देते हैं।'

समय आ गया है कि इधर-उधर की बातें न कर सभी राजनीतिक दल एकजुट होकर भारत की जनता के साथ मिल कर सेना का समर्थन करें और उसका हौसला बढ़ाएं। ऐसा करने से देश की संप्रभुता और अखंडता को बल मिलेगा और देश विरोधी ताकतें परास्त होंगी। हमें यह नहीं भूलना चागिए कि सेना अपना काम बखूबी जानती है।

● *शिबन कृष्ण रैणा, अरावली विहार, अलवर*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

गांवों की सुध

सत्ताईस फरवरी के अंक में 'शहरीकरण की चुनौतियां' लेख में अत्यंत महत्त्वपूर्ण मुद्दे को उठाया गया है। यह बात गौर करने लायक है कि 2050 तक देश की 50 फीसद आबादी शहरों में निवास करेगी और हमारी सरकार के पास इसे गांवों में रोकने का कोई भी कारगर उपाय नहीं है। जो उपाय किए भी गए हैं वे नाकाफी साबित हुए हैं। गांवों से बड़ी तादाद में शहरों की ओर पलायन होने से सरकार और आम आदमी दोनों की चुनौतियां बढ़ेंगी। प्रदूषण, यातायात, शिक्षा, रोजगार जैसी बुनियादी जरूरतों से आम नागरिकों को जूझना पड़ेगा। सरकार के छोटे-बड़े प्रयास गांवों को बचाने के लिए हो रहे हैं लेकिन ऐसे ठोस उपाय किए जाने चाहिए कि गांव के लोगों को गांव में ही रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएं मिल सकें, ताकि उन्हें शहरों की ओर रुख न करना पड़े। ऐसा नहीं किया गया तो आने वाला समय भयावह होगा। इसका ताजा उदाहरण दिल्ली जैसे महानगरों की बढ़ती समस्याओं के रूप में देखा जा सकता है।

इसके साथ जो दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू जुड़ा हुआ है वह है देश में पूंजी का असमान वितरण। आज भी देश की 70 फीसद आबादी खेती से जुड़ी है जबकि किसानों पर होने वाला खर्च इस अनुपात में [illegible] फीसद से भी कम है। इस संदर्भ में सरकार को गंभीरता से विचार करना होगा। पहले की सरकारों ने इसे गंभीरता से नहीं लिया जिसके कारण अभी तक यह समस्या यथावत बनी हुई है।

● *धर्मेंद्र प्रताप सिंह, रायबरेली रोड, लखनऊ*